

दीर्घ तपस्वी महावीर

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहिले जब भगवान महावीर का जन्म नहीं हुआ था, भारत की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति ऐसी थी जो एक विशिष्ट आदर्श की अपेक्षा रखती थी। देश में ऐसे अनेक मठ थे, जहाँ आजकल के ब्राह्मणों की तरह भुण्ड के भुण्ड रहते थे और तरह-तरह की तामसिक तपस्याएँ करते थे। अनेक ऐसे आश्रम थे, जहाँ दुनियादार आदमी की तरह ममत्व रखकर आजकल के महन्तों के सदृश बड़े-बड़े धर्मगुरु रहते थे। कितनी ही संस्थाएँ ऐसी थीं जहाँ विद्या की अपेक्षा कर्मकाण्ड की, खास करके यज्ञ की प्रधानता थी और उन कर्मकाण्डों में पशुओं का बलिदान धर्म माना जाता था। समाज में एक ऐसा बड़ा दल था, जो पूर्वज के परिश्रमपूर्वक उपार्जित गुरुपद को अपने जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में स्थापित करता था। उस वर्ग में पवित्रता की, उच्चता की और विद्या की ऐसी कृत्रिम अस्मिता रूढ़ हो गई थी कि जिसकी बदौलत वह दूसरे कितने ही लोगों को अपवित्र मानकर अपने से नीच समझता और उन्हें घृणायोग्य समझता, उनकी छाया के स्पर्श तक को पाप मानता तथा ग्रन्थों के अर्थहीन पठनमात्र में पाण्डित्य मानकर दूसरों पर अपनी गुरुसत्ता चलाता। शास्त्र और उसकी व्याख्याएँ विद्वद्गम्य भाषा में होती थीं, इससे जनसाधारण उस समय उन शास्त्रों से यथेष्ट लाभ न उठा पाता था। स्त्रियों, शूद्रों और खास करके अतिशूद्रों को किसी भी बात में आगे बढ़ने का पूरा मौका नहीं मिलता था। उनकी आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाओं के जाग्रत होने का, अथवा जाग्रत होने के बाद उनके पुष्ट रखने का कोई खास आलंबन न था। पहिले से प्रचलित जैन गुरुओं की परम्परा में भी बड़ी शिथिलता आ गई थी। राजनैतिक स्थिति में किसी प्रकार की एकता नहीं थी। गण-सत्ताक अथवा राज-सत्ताक राज्य इधर-उधर बिखरे हुए थे। यह सब कलह में जितना अनुराग रखते, उतना मेल मिलाप में नहीं। हर एक दूसरे को कुचलकर अपने राज्य के विस्तार करने का प्रयत्न करता था।

ऐसी परिस्थिति को देखकर उस काल के कितने ही विचारशील और दयालु व्यक्तियों का व्याकुल होना स्वाभाविक है। उस दशा को सुधारने की इच्छा कितने ही लोगों को होती है। वह सुधारने का प्रयत्न भी करते हैं और ऐसे साधारण प्रयत्न कर सकने वाले नेता की अपेक्षा रखते हैं। ऐसे समय में बुद्ध और महावीर जैसों का जन्म होता है।

महावीर के वर्धमान, विदेहदिन और श्रमण भगवान यह तीन नाम और हैं। विदेहदिन नाम मातृ पक्ष का सूचक है, वर्धमान नाम सबसे पहिले पड़ा। त्यागी जीवन में उत्कट तप के कारण महावीर नाम से प्रसिद्ध हुए और उपदेशक जीवन में श्रमण भगवान कहलाए। इससे हम भी गृह जीवन, साधक जीवन और उपदेशक जीवन इन तीन भागों में क्रमशः वर्धमान, महावीर और श्रमण भगवान इन तीन नामों का प्रयोग करेंगे।

महावीर की जन्मभूमि गंगा के दक्षिण विदेह (वर्तमान बिहार-प्रान्त) है, वहाँ क्षत्रियकुण्ड नाम का एक वस्त्र था। जैन लोग उसे महावीर के जन्मस्थान के कारण तीर्थभूमि मानते हैं।

जाति और वंश—

श्री महावीर की जाति क्षत्रिय थी और उनका वंश नाथ (ज्ञात) नाम से प्रसिद्ध था। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था, उन्हें श्रेयांस और यशांस भी कहते थे। चाचा का नाम ह् पार्श्व था और माता के त्रिशला, विदेहदिना तथा प्रिय-कारिणी यह तीन नाम थे। महावीर के एक बड़ा भाई और एक बड़ी बहिन थी। बड़े भाई नन्दीवर्धन का विवाह उनके मामा तथा वैशाली नगरी के अधिपति महाराज चेटक की पुत्री के साथ हुआ था। बड़ी बहिन सुनन्दा की शादी क्षत्रियकुण्ड में हुई थी और उसके जमाली नाम का एक पुत्र था। महावीर स्वामी की प्रिय-दर्शना नामक पुत्री से उसका विवाह हुआ था। आगे चलकर जमाली ने अपनी स्त्री-सहित भगवान महावीर से दीक्षा भी अंगीकार कर ली थी। श्वेताम्बरों की धारणा के अनुसार महावीर ने विवाह किया था, उनके एक ही पत्नी थी और उनका नाम था यशोदा। इनके सिर्फ एक ही कन्या होने का उल्लेख मिलता है।

ज्ञात क्षत्रिय सिद्धार्थ की राजकीय सत्ता साधारण ही होगी, परन्तु वैभव और कुलीनता ऊँचे दर्जे की होनी चाहिए। क्योंकि उसके बिना वैशाली के अधिपति चेटक की बहिन के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होना संभव नहीं था।

गृह-जीवन—

वर्धमान का बाल्यकाल बहुतांश में क्रीड़ाओं में व्यतीत होता है। परन्तु जब वह अपनी उम्र में आते हैं और विवाहकाल प्राप्त होता है तब वह वैवाहिक जीवन की ओर अरुचि प्रकट करते हैं। इससे तथा भावी तीव्र वैराग्यमय जीवन से यह स्पष्ट दिखलाई देता है कि उनके हृदय में त्याग के बीज जन्मसिद्ध थे। उनके माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा के अनुयायी थे। यह परम्परा निर्ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध थी और साधारण तौर पर इस परम्परा में त्याग और

तप की भावना प्रबल थी। भगवान् का अपने कुलधर्म के परिचय में आना और उस धर्म के आदर्शों का उसके सुसंस्कृत मन को आकर्षित करना सर्वथा संभव है। एक ओर जन्मसिद्ध वैराग्य के बीच और दूसरी ओर कुलधर्म के त्याग और तपस्या के आदर्शों का प्रभाव, इन दोनों कारणों से योग्य अवस्था को प्राप्त होते ही वर्धमान ने अपने जीवन का कुछ तो ध्येय निश्चित किया ही होगा। और वह ध्येय भी कौनसा ? 'धार्मिक जीवन'। इस कारण यदि विवाह की ओर अरुचि हुई हो तो वह साहजिक है। फिर भी जब माता-पिता विवाह के लिए बहुत आग्रह करते हैं, तब वर्धमान अपना निश्चय शिथिल कर देते हैं और केवल माता-पिता के चित्त को सन्तोष देने के लिए वैवाहिक संबन्ध को स्वीकार कर लेते हैं। इस घटना से तथा बड़े भाई को प्रसन्न रखने के लिए गृहवास की अवधि बढ़ा देने की घटना से वर्धमान के स्वभाव के दो तत्त्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। एक तो बड़े-बूढ़ों के प्रति बहुमान और दूसरे मौके को देखकर मूल सिद्धान्त में बाधा न पड़ने देते हुए, समझौता कर लेने का औदार्य। यह दूसरा तत्त्व साधक और उपदेशक जीवन में किस प्रकार काम करता है, यह हम आगे चलकर देखेंगे। जब माता-पिता का स्वर्गवास हुआ, तब वर्धमान की उम्र २८ वर्ष की थी। विवाह के समय की अवस्था का उल्लेख नहीं मिलता। माता-पिता के स्वर्गवास के बाद वर्धमान ने गृहत्याग की पूरी तैयारी कर ली थी, परन्तु इससे ज्येष्ठ बन्धु को कष्ट होते देख गृहजीवन को दो वर्ष और बढ़ा दिया। परन्तु इसलिए कि त्याग का निश्चय कायम रहे, गृहवासी होते हुए भी आपने दो वर्ष तक त्यागियों की भाँति ही जीवन व्यतीत किया।

साधक जीवन

तीस वर्ष का तरुण क्षत्रिय-पुत्र वर्धमान जब गृह त्याग करता है, तब उसके आन्तर और बाह्य दोनों जीवन एकदम बदल जाते हैं। वह सुकुमार राजपुत्र अपने हाथों केश का लु'चन करता है और तमाम वैभवों को छोड़कर एकाकी जीवन और लघुता स्वीकार करता है। उसके साथ ही यावज्जीवन सामायिक चारित्र (आजीवन समभाव से रहने का नियम) अंगीकार करता है; और इसका सोलहों आने पालन करने के लिए भीषण प्रतिज्ञा करता है—

“चाहे दैविक, मानुषिक अथवा तिर्यक जातीय, किसी भी प्रकार की विघ्न-बाधाएं क्यों न आएँ, मैं सबको बिना किसी दूसरे की मदद लिए, समभाव से सहन करूँगा।”

इस प्रतिज्ञा से कुमार के वीरत्व और उसके परिपूर्ण निर्वाह से उसके महान् वीरत्व का परिचय मिलता है। इसी से वह साधक जीवन में 'महावीर' की

ख्याति को प्राप्त करता है। महावीर के साधना विषयक आचारांग के प्राचीन और प्रामाणिक वर्णन से, उनके जीवन की भिन्न-भिन्न घटनाओं से तथा अत्र तक उनके नाम से प्रचलित सम्प्रदाय की विशेषता से, यह जानना कठिन नहीं है कि महावीर को किस तत्त्व की साधना करनी थी, और उस साधना के लिए उन्होंने मुख्यतः कौन से साधन पसन्द किए थे। महावीर अहिंसा-तत्त्व की साधना करना चाहते थे, उसके लिए संयम और तप यह दो साधन उन्होंने पसन्द किए। उन्होंने यह विचार किया कि संसार में जो बलवान् होता है, वह निर्बल के सुख और साधन, एक डाकू की तरह छीन लेता है। यह अपहरण करने की वृत्ति अपने माने हुए सुख के राग से, खास करके कायिक सुख-शीलता से पैदा होती है। यह वृत्ति ही ऐसी है कि इससे शान्ति और समभाव का वायु-मण्डल कलुषित हुए बिना नहीं रहता है। प्रत्येक मनुष्य को अपना सुख और अपनी सुविधा इतने कीमती मालूम होते हैं कि उसकी दृष्टि में दूसरे अनेक जीवधारियों की सुविधा का कुछ मूल्य ही नहीं होता। इसलिए प्रत्येक मनुष्य यह प्रमाणित करने की कोशिश करता है कि जीव, जीव का भक्षण है 'जीवो जीवस्य जीवनम्।' निर्बल को बलवान् का पोषण करके अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी चाहिए। सुख के राग से ही बलवान् लोग निर्बल प्राणियों के जीवन की आहुति देकर उसके द्वारा अपने परलोक का उत्कृष्ट मार्ग तैयार करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार सुख की मिथ्या भावना और संकुचित वृत्ति के ही कारण व्यक्तियों और समूहों में अन्तर बढ़ता है, शत्रुता की नाँव पड़ती है और इसके फलस्वरूप निर्बल बलवान् होकर बदला लेने का निश्चय तथा प्रयत्न करते हैं और बदला लेते भी हैं। इस तरह हिंसा और प्रतिहिंसा का ऐसा मलीन वायुमण्डल तैयार हो जाता है कि लोग संसार के सुख को स्वयं ही नर्क बना देते हैं। हिंसा के इस भयानक स्वरूप के विचार से महावीर ने अहिंसा-तत्त्व में ही समस्त धर्मों का, समस्त कर्तव्यों का, प्राणीमात्र की शान्ति का मूल देखा। उन्हें स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि यदि अहिंसा-तत्त्व सिद्ध किया जा सके, तो ही जगत् में सच्ची शान्ति फैलाई जा सकती है। यह विचार कर उन्होंने कायिक सुख की समता से वैर-भाव को रोकने के लिए तप प्रारम्भ किया, और अवैर्य जैसे मानसिक दोष से होने वाली हिंसा को रोकने के लिए संयम का अवलम्बन किया।

संयम का संबन्ध मुख्यतः मन और वचन के साथ होने के कारण उसमें ध्यान और मौन का समावेश होता है। महावीर के समस्त साधक जीवन में संयम और तप यही दो बातें मुख्य हैं और उन्हें सिद्ध करने के लिए उन्होंने कोई १२ वर्षों तक जो प्रयत्न किया और उसमें जिस तत्परता और अप्रमाद का परि-

चय दिया, वैसा आज तक की तपस्या के इतिहास में किसी व्यक्ति ने दिया हो यह नहीं दिखाई देता । कितने लोग महावीर के तप को देह-दुःख और देह-दमन कह कर उसकी अवहेलना करते हैं । परन्तु यदि वे सत्य तथा न्याय के लिए महावीर के जीवन पर गहरा विचार करेंगे तो यह मालूम हुए बिना न रहेगा कि, महावीर का तप शुष्क देह-दमन नहीं था । वह संयम और तप दोनों पर समान रूप से जोर देते थे । वह जानते थे कि यदि तप के अभाव से सहन-शीलता कम हुई तो दूसरों की सुख सुविधा की आहुति देकर अपनी सुख-सुविधा बढ़ाने की लालसा बढ़ेगी और उसका फल यह होगा कि संयम न रह पाएगा । इसी प्रकार संयम के अभाव में कोरा तप भी, पराधीन प्राणी पर आनच्छापूर्वक आ पड़े देह-कष्ट की तरह निरर्थक है ।

ज्यों-ज्यों संयम और तप की उत्कृष्टता से महावीर अहिंसा तत्त्व के अधिकाधिक निकट पहुँचते गए, त्यों-त्यों उनकी गम्भीर शान्ति बढ़ने लगी और उसका प्रभाव आसपास के लोगों पर अपने-आप होने लगा । मानस-शास्त्र के नियम के अनुसार एक व्यक्ति के अन्दर बलवान् होने वाली वृत्ति का प्रभाव आस-पास के लोगों पर जान-अनजान में हुए बिना नहीं रहता ।

इस साधक जीवन में एक उल्लेख-योग्य ऐतिहासिक घटना घटती है । वह यह है कि महावीर की साधना के साथ गोशालक नामक एक व्यक्ति प्रायः ६ वर्ष व्यतीत करता है और फिर उनसे अलग हो जाता है । आगे चल कर यह उनका प्रतिपक्षी होता है और आजीवक सम्प्रदाय का नायक बनता है । आज यह कहना कठिन है कि दोनों किस हेतु से साथ हुए और क्यों अलग हुए, परन्तु एक प्रसिद्ध आजीवक सम्प्रदाय के नायक और तपस्वी महावीर का दीर्घ काल तक साहचर्य सत्यशोधकों के लिए अर्थसूचक अवश्य है । १२ वर्ष की कठोर और दीर्घ साधना के पश्चात् जब उन्हें अपने अहिंसा तत्त्व के सिद्ध हो जाने की पूर्ण प्रतीति हुई, तब वे अपना जीवन-क्रम बदलते हैं । अहिंसा का सार्वभौम धर्म उस दीर्घ-तपस्वी में परिप्लुत हो गया था, अब उनके सार्वजनिक जीवन से कितनी ही भव्य आत्माओं में परिवर्तन हो जाने की पूर्ण सम्भावना थी । मगध और विदेह देश का पूर्वकालीन मलीन वायु-मण्डल धीरे-धीरे शुद्ध होने लगा था, क्योंकि उसमें उस समय अनेक तपस्वी और विचारक लोक-हित की आकांक्षा से प्रकाश में आने लगे थे । इसी समय दीर्घ तपस्वी भी प्रकाश में आए ।

उपदेशक जीवन —

अमण भगवान का ४३ से ७२ वर्ष तक का यह दीर्घ जीवन सार्वजनिक

सेवा में व्यतीत होता है। इस समय में उनके द्वारा किए गए मुख्य कामों की नामावली इस प्रकार है —

(१) जाति-पाँति का तनिक भी भेद रखे बिना हर एक के लिए, शूद्रों के लिए भी, भिक्षु-पद और गुरु-पद का रास्ता खुला करना। श्रेष्ठता का आधार जन्म नहीं बल्कि गुण, और गुणों में भी पवित्र जीवन की महत्ता स्थापित करना।

(२) पुरुषों की तरह स्त्रियों के विकास के लिए भी पूरी स्वतन्त्रता और विद्या तथा आचार दोनों में स्त्रियों की पूर्ण योग्यता को मानना। उनके लिए गुरु-पद का आध्यात्मिक मार्ग खोल देना।

(३) लोक-भाषा में तत्त्वज्ञान और आचार का उपदेश करके केवल विद्वद्गम्य संस्कृत भाषा का मोह घटाना और योग्य अधिकारी के लिए ज्ञान-प्राप्ति में भाषा का अन्तराय दूर करना।

(४) ऐहिक और पारलौकिक सुख के लिए होने वाले यज्ञ आदि कर्म-कारणों की अपेक्षा संयम तथा तपस्या के स्वावलंबी तथा पुरुषार्थ-प्रधान मार्ग की महत्ता स्थापित करना और अहिंसा-धर्म में प्रीति उत्पन्न करना।

(५) त्याग और तपस्या के नाम पर रूढ़ शिथिलाचार के स्थान पर सच्चे त्याग और सच्ची तपस्या की प्रतिष्ठा करके भोग की जगह योग के महत्त्व का वायु-मंडल चारों ओर उत्पन्न करना।

श्रमण भगवान् के शिष्यों के त्यागी और गृहस्थ यह दो भाग थे। उनके त्यागी भिक्षुक शिष्य १४००० और भिक्षुक शिष्याएँ ३६००० होने का उल्लेख मिलता है। इसके सिवाय लाखों की संख्या में गृहस्थ शिष्यों के होने का भी उल्लेख है। त्यागी और गृहस्थ इन दोनों वर्गों में चारों वर्णों के स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे। इन्द्रभूति आदि ११ गणेश्वर ब्राह्मण थे। उदायी, मेघकुमार आदि अनेक क्षत्रिय भी भगवान् के शिष्य हुए थे। शालिभद्र इत्यादि वैश्य और महारज तथा हरिकेशी जैसे अतिशूद्र भी भगवान् की पवित्र दीक्षा का पालन कर उच्च पथ को पहुँचे थे। साखियों में चन्दनशाला क्षत्रिय-पुत्री थीं, देवानन्दा ब्राह्मणी थीं। गृहस्थों में उनके मामा वैशालीपति चेटक, राजगृही के महाराजा श्रेणिक (बिम्बसार) और उनका पुत्र कोणिक (अजातशत्रु) आदि अनेक क्षत्रिय भूपति थे। आनन्द, कामदेव आदि प्रधान दस श्रावकों में शकडाल कुम्हार जाति का था और शेष ६ वैश्य खेती और पशु-पालन पर निर्वाह करने वाले थे। टंक कुम्हार होते हुए भी भगवान् का समभूत और बड़ उपासक था। खन्दक, अम्बड़ आदि अनेक परिव्राजक तथा सोमील आदि अनेक विद्वान् ब्राह्मणों ने श्रमण भगवान् का अनुसरण किया था। गृहस्थ उपासिकाओं में

रेवती, सुलसा और जयन्ती के नाम प्रख्यात हैं। जयन्ती जैसी भक्त थी वैसी ही विदुषी भी थी। आज्ञादी के साथ भगवान् से प्रश्न करती और उत्तर सुनती थी। भगवान् ने उस समय स्त्रियों की योग्यता किस प्रकार आँकी, उसका यह उदाहरण है। महावीर के समकालीन धर्म-प्रवर्तकों में आजकल कुछ थोड़े ही लोगों के नाम मिलते हैं—तथागत गौतमबुद्ध, पूर्ण कश्यप, संजय वेलाढिपुत्त, पकुध कञ्चायन, अजित केसकम्बलि और मंखली गोशालक।

समभौता—

श्रमण भगवान् के पूर्व से ही जैन-सम्प्रदाय चला आ रहा था, जो निर्ग्रन्थ के नाम से विशेष प्रसिद्ध था उस समय प्रधान निर्ग्रन्थ केशीकुमार आदि थे। वे सब अपने को श्री पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी मानते थे। वे कपड़े पहिनते थे और सो भी तरह-तरह के रंग के। इस प्रकार वह चातुर्याम धर्म अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन चार महाव्रतों का पालन करते थे। श्रमण भगवान् ने इस परम्परा के खिलाफ अपने व्यवहार से दो बातें नई प्रचलित कीं—एक अचेल धर्म, दूसरी ब्रह्मचर्य (स्त्री-विरमण)। पहिले की परम्परा में वस्त्र और स्त्री के संबन्ध में अवश्य शिथिलता आ गई होगी और उसे दूर करने के लिये अचेल धर्म और स्त्री-विरमण को निर्ग्रन्थत्व में स्थान दिया गया। अपरिग्रह व्रत से स्त्री-विरमण को अलग करके चार के बदले पाँच महाव्रतों के पालन करने का नियम बनाया। श्री पार्श्वनाथ की परम्परा के सुयोग्य नेताओं ने इस संशोधन को स्वीकृत किया और प्राचीन तथा नवीन दोनों भित्तिओं का सम्मेलन हुआ। कितने ही विद्वानों का यह मत है कि इस समभौते में वस्त्र रखने तथा न रखने का जो मतभेद शान्त हुआ था वह आगे चलकर फिर पक्षपात का रूप धारण करके श्वेताम्बर, दिगम्बर सम्प्रदाय के रूप में धक्क उठा। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाले विद्वानों को श्वेताम्बर, दिगम्बर में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं जान पड़ता; परन्तु आजकल तो सम्प्रदाय-भेद की अस्मिता ने दोनों शाखाओं में नाशकारिणी अग्नि उत्पन्न कर दी है। इतना ही नहीं बल्कि थोड़े-थोड़े अभिनिवेश के कारण आज दूसरे भी अनेक छोटे-बड़े भेद भगवान् के अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) के नीचे खड़े हो गए हैं।

उपदेश का रहस्य—

श्रमण भगवान् के समग्र जीवन और उपदेश का संहित रहस्य दो बातों में आ जाता है। आचार में पूर्ण अहिंसा और तत्त्वज्ञान में अनेकान्त। उनके संप्रदाय के आचार को और शास्त्र के विचार को इन तत्त्वों का ही भाव्य समझिए। वर्तमानकाल के विद्वानों का यही निष्पक्ष मत है।

त्रिपक्षी—

श्रमण भगवान् के शिष्यों में उनसे अलग होकर उनके खिलाफ विरोधी पन्थ प्रचलित करने वाले उनके जामाता क्षत्रिय-पुत्र जमाली थे । इस समय तो उनकी स्मृतिमात्र जैन ग्रन्थों में है । दूसरे प्रतिपक्षी उनके पूर्व सहचर गोशालक थे । उनका आजीवक पन्थ रूपान्तर पाकर आज भी हिन्दुस्तान में मौजूद है । भगवान् महावीर के जीवन का मुख्य भाग विदेह और मगध में व्यतीत हुआ है । ऐसा जान पड़ता है कि वे अधिक से अधिक यमुना के किनारे तक आए होंगे । आवस्ती, कोशांबी, ताम्रलिप्त, चम्पा और राजगृही इन शहरों में वह बार-बार आते-जाते और रहते थे ।

उपसंहार—

श्रमण भगवान् महावीर की तपस्या और उनके शान्तिपूर्ण दीर्घ-जीवन और उपदेश से उस समय मगध, विदेह, काशी कोशल और दूसरे कितने ही प्रदेशों के धार्मिक और सामाजिक जीवन में बड़ी क्रान्ति हो गई थी । उसका प्रमाण केवल शास्त्र के पन्नों में ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के मानसिक जगत् में अब तक जागृत अहिंसा और तप का स्वाभाविक अनुराग है । आज से २४५६ वर्ष पूर्व राजगृही के पास पावापुरी नामक पवित्र स्थान में कार्तिक कृष्ण अमावस की रात को इस तपस्वी का ऐहिक जीवन पूरा हुआ : (निर्वाण हुआ) और उनके स्थापित संघ का भार उनके प्रधान शिष्य सुधर्मा स्वामी पर आ पड़ा ।
ई. स. १६३३]